[illegible] आचार्यवर के शिष्य, भक्त व प्रेमी जन अवश्य इस पर विचार करेंगे।

एक और बात

प्रायः यह रीति प्रचलित हो चुकी है कि किसी भी निधि के लिए तब तक रुपया नहीं मिलता जब तक व्यक्तिगत रूप से मिलकर उन्हें सहायता के लिए प्रेरित न किया जाए। वस्तुतः यह रीति अनार्य रीति है। यदि श्री पूज्य गुरुवर्य इस नीति पर चलते तो वे लक्षों रुपया इकट्ठा कर सकते थे परन्तु यह ब्राह्मणवृत्ति के विपरीत होने से उन्होंने सदा [illegible] स्वयं दे जाए। यही वास्तविक आदर्श दान की रीति है और यही श्रद्धया देयम् का तत्त्व है। घर पर पहुँचने पर मन रखने के लिए अश्रद्धापूर्वक किया दान दाता और ग्रहीता दोनों के लिए कल्याणकारक नहीं होता। अतः जिन्हें देना हो वे स्वयं अपना अंश श्री मन्त्री रामलाल कपूर ट्रस्ट गुरु बाज़ार अमृतसर या वेदवाणी कार्यालय में भेज देवें।

आर्य जन सेवक

युधिष्ठिर मीमांसक

अमृतसर में पौराणिक विद्वानों तथा श्रीशंकराचार्य के साथ नौ घण्टे तक महान् शास्त्रार्थ

[पौराणिक विद्वानों तथा श्री गोवर्धनपीठाधीश शंकराचार्य वा श्री स्वामी करपात्रीजी के साथ अमृतसर में मेरा १६, १७ नवम्बर को ६॥ घण्टे संस्कृत में और २॥ घण्टे हिन्दी में शास्त्रार्थ हुआ। यद्यपि यह शास्त्रार्थ मेरा व्यक्तिगत था, पुनरपि यतः मैं ऋषि दयानन्द प्रदर्शित वैदिक सिद्धान्तों में पूर्ण आस्था रखता हूँ अतः यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज के साथ हुआ, ऐसा ही माना गया। इस शास्त्रार्थ का उल्लेख भी मुझे ही करना पड़ रहा है और यह मेरे स्वभाव के विपरीत है। पुनरपि इस शास्त्रार्थ में ऐसे कई आज तक अछूते प्रमाण, उनके गम्भीर अर्थ तथा युक्तियाँ दी गईं जो आर्य जनता तथा आर्य विद्वानों के लिए भविष्य में कभी लाभप्रद हो सकते हैं। (विशेषकर १७ ता० के मध्याह्नोत्तर के शास्त्रार्थ के समय की)। अतः न चाहते हुए भी मैं इस शास्त्रार्थ की संक्षिप्त रूप रेखा उपस्थित कर रहा हूँ। इसमें एक शब्द भी ऐसा नहीं है, जो उस काल के वर्णन से बाहर का हो। हाँ, भाषान्तर अवश्य है। इसे वेदवाणी में शीघ्र ही प्रकाशित करना था, परन्तु श्री पूज्य गुरुवर के स्वर्गमन के कारण समय पर प्रकाशित नहीं कर सके।

—युधिष्ठिर मीमांसक]

अमृतसर में ११ नवम्बर से १९ नवम्बर ६४ तक अखिल भारतवर्षीय सर्व वेदशाखा सम्मेलन का सप्तम अधिवेशन हुआ था। इसके अध्यक्ष गोवर्धन पीठाधीश (पुरी के शंकराचार्य) थे और श्री करपात्रीजी की अध्यक्षता में हुआ था। लगभग ५० वैदिक तथा अन्य विषयों के विद्वान् सम्मिलित हुए थे। सम्मेलन की ओर से प्रायः सदा ही कतिपय आर्य विद्वानों को भी निमन्त्रण भेजा जाता है, मार्गव्यय आदि देने की व्यवस्था भी सम्मेलन की ओर से की जाती है।

मुझे भी प्रायः सदा ही निमन्त्रण प्राप्त होता है। चार वर्ष पूर्व देहली के अधिवेशन में मैं सम्मिलित हुआ था और इस बार पुनः सम्मिलित होने का अवसर प्राप्त हुआ।

देहली के अधिवेशन में अन्तिम दिन अध्यक्ष श्री करपात्रीजी के मध्याह्न में उठ जाने पर किसी पौराणिक वक्ता ने आर्य समाज और ऋषि दयानन्द के प्रति पर्याप्त अनुचित बातें कहीं। मध्याह्नोत्तर सभा आरम्भ होने पर मैंने श्री करपात्रीजी से उनकी अनुपस्थिति में हुई अनुचित कार्यवाही के विषय में ध्यान आकृष्ट करके श्री स्वामी मेधानन्दजी सरस्वती के द्वारा पौराणिक वक्ता के द्वारा कही गई अनुचित बातों का उत्तर दिलवा दिया। तत्पश्चात् मैंने ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य के वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में विशिष्ट व्याख्यान दिया। उक्त आकस्मिक घटना के अतिरिक्त देहली अधिवेशन

की कार्यवाही प्रायः संयत रूप से हुई। विद्वानों के विचार विमर्श चलते रहे।

इस बार श्री शंकराचार्यजी की ओर से निमन्त्रण प्राप्त होने पर मैंने उन्हें एक पत्र लिखा, जिसमें देहली में हुई अनुचित घटना का संकेत किया और लिखा कि जब आप लोग अपने से भिन्न विचार वाले विद्वानों को भी सम्मेलन में निमन्त्रित करते हैं, तब उनकी मान्यताओं का भी ध्यान रखना आप का कर्त्तव्य है। यदि हमें बुला कर हमारे सन्मुख ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज के विषय में निरर्गल प्रलाप किया जाए तो उसका एकमात्र यही अभिप्राय होगा कि हमें बुलाकर अपमानित करने की आप की योजना है। यदि ऐसा है तो हमारा आना व्यर्थ है। मैं तो केवल शास्त्रीय चर्चा में ही भाग लेना चाहता हूँ। इत्यादि।

इस पत्र का जो उत्तर आया उसका पूर्वार्ध प्रायः प्रतिक्रियात्मक बातों से भरा था, परन्तु अन्त में लिखा था कि आप विश्वास रखें ऐसी कोई अनुचित कार्यवाही न होगी। आप आना चाहें तो आ सकते हैं।

यतः मुझे अमृतसर में कुछ अन्य भी कार्य था, अतः मैंने उत्तर दिया कि मैं १५ नवम्बर को मध्याह्नोत्तर पहुँचूंगा। तदनुसार सम्मेलन में १५ नवम्बर को सायं ५ बजे उपस्थित हुआ।

आर्यसमाज की उदासीनता

इस बार न मालूम मेरे पत्र के कारण अथवा उससे पूर्व आर्यसमाज अमृतसर के उत्सव में आर्यसमाज की ओर से हुए व्याख्यानों से रुष्ट से होने के कारण आर्यसमाज को नीचा दिखाने की सम्भवतः पूर्व से ही योजना बना रखी थी। मुझे इसका कुछ भी ज्ञान न था।

अमृतसर नगर में आर्यसमाज का अच्छा जोर है। उन के सामने ही इस महान् आयोजन की तैयारी बहुत दिनों से चल रही थी। स्वयं शंकराचार्य महोदय तीन मास से डेरा लगाए बैठे थे, फिर भी अमृतसर आर्यसमाज के नेताओं ने इस सम्भावित आक्रमण के प्रतिरोध के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। ११ या १२ तारीख को सार्वदेशिक सभा को शास्त्रार्थ के लिए विद्वानों को भेजने के लिए तार देकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ ली गई।

देहली के अधिवेशन में भी यही स्थिति थी। सार्वदेशिक सभा और स्थानीय लगभग ११० समाजों के होते हुए भी किसी ने भी आवश्यकता के समय उचित उत्तर देने के लिए दो चार विद्वानों को बुला कर तैयार नहीं रखा था। उसमें श्री पं० बुद्धदेवजी और श्री स्वामी रामेश्वरानन्दजी कुछ समय के लिए व्यक्तिगत रूप से उपस्थित हुए थे। वस्तुतः आर्यसमाज की यह उदासीनता उसके लिए बहुत हानिकारक हो रही है, विपक्षियों के हौसले बहुत बढ़ गए हैं।

शास्त्रार्थ का आरम्भ

१६ नवम्बर को प्रातः मैं १० बजे अधिवेशन में उपस्थित हुआ। मुझे देखकर एक पौराणिक विद्वान् ने (पूर्व योजनानुसार) उठ कर कहा[1]—

"वेद में विज्ञान है या नहीं" इस पर अब शास्त्रार्थ होगा। हमारा पक्ष है कि वेद में विज्ञान नहीं है, वेद केवल यज्ञ कर्म के लिए हैं। इसलिए याज्ञिक अर्थ ही प्रामाणिक है। स्वामी दयानन्द ने आधुनिक विज्ञान को देखकर तदनुसार वेद से विज्ञान निकालने की चेष्टा की है। उदाहरणार्थ—'आयं गौः पृश्निरक्रमीत्' मन्त्र से पृथिवी का सूर्य के चारों ओर घूमना सिद्ध किया है, जबकि वेद का सिद्धान्त है कि सूर्य घूमता है। जो कोई वेद में विज्ञान मानता है वह स्वामी दयानन्द के अर्थ की प्रामाणिकता सिद्ध करे।[2]

यद्यपि यह मुझे ही लक्षित करके कहा गया था, पुनरपि इस आशा से कि सम्भव है स्थानीय आर्यसामाजिक व्यक्तियों ने किन्हीं अन्य विद्वानों का प्रबन्ध किया हुआ होगा। वे आए होंगे, ऐसा सोच कर मैं मौन रहा। एक मिनट पश्चात् पुनः घोषणा की गई कि जो कोई स्वामी दयानन्द के उपस्थापित मन्त्रार्थ की प्रामाणिकता सिद्ध करना चाहे करे अन्यथा यह समझा जाएगा कि स्वामी दयानन्द का उक्त मन्त्रार्थ अशुद्ध है।

---

१. यह ध्यान में रहे कि सम्मेलन की सारी कार्यवाही प्रायः संस्कृत में ही हुई। अतः शास्त्रार्थ भी संस्कृत में ही हुआ।

२. यह ध्यान रहे कि पूर्वपक्षी ने मुख्य विषय का प्रतिपादन न करके ऋषि दयानन्द के मन्त्रार्थ पर ही सीधा आक्षेप मुझे शास्त्रार्थ में घसीटने के लिए ही किया था।

इस द्वितीय घोषणा पर मैं उठा। उठ कर कहा कि वेद में विज्ञान है इतना ही नहीं, विज्ञान ही वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। भारतीय विज्ञान और यूरोपीय विज्ञान में भूतलोकाश का अन्तर है और यूरोपीय विज्ञान प्रायः परिवर्तित होता रहता है। अतः जो व्यक्ति आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार वेद से विज्ञान निकालने की चेष्टा करता है तो वह वस्तुतः निन्द्य है, परन्तु स्वामी दयानन्द ने वेदार्थ में जिस पृथिवी भ्रमण विज्ञान का प्रतिपादन किया है वह भारतीय विज्ञान है। आर्यभट्ट ने अपने सिद्धान्त शिरोमणि ग्रन्थ में पृथिवी भ्रमण का विस्तार से प्रतिपादन किया है। ऐतरेय और गोपथ ब्राह्मण में सूर्य के उदय और अन्त होने का निषेध किया है। इससे स्पष्ट है कि प्राचीन भारतीय ऋषि मुनि और आचार्य पृथिवी का भ्रमण तात्त्विक रूप से मानते थे।[1] जहाँ-जहाँ सूर्य भ्रमण का प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख है यह स्थूल दृष्टि से किया गया है। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण श्रौत यज्ञ विज्ञान मूलक हैं वे सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय काल में होने वाले आधिदैविक यज्ञ के रूपक है (इस प्रकरण में कर्म काण्ड गत अग्न्याधान का पार्थिव अग्नि के आधान का रूपकत्व प्राचीन संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों से विस्तार से बताया)। इस कारण जब कर्म-काण्ड गत यज्ञ मूलतः आधिदैविक विज्ञान मूलक हैं अतः वेद के याज्ञिक अर्थ की भी परिसमाप्ति आधिदैविक विज्ञान में होती है। इसलिए वेद का मुख्य प्रतिपाद्य विषय विज्ञान ही है। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि भारतीय परम्परा में यह बात सर्व सम्मत रूप से स्वीकृत है कि वेद के प्रत्येक मन्त्र का अर्थ तीन प्रकार का होता है। याज्ञिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक (इसमें स्कन्द स्वामी आदि के अनेक प्रमाण दिए) आधिदैविक अर्थ सारा विज्ञान मूलक ही है। अतः वेद का वैज्ञानिक अर्थ करना वस्तुतः ठीक है।

मेरी इस स्थापना के पश्चात् पूर्वपक्षी पण्डित ने मुख्य विषय छोड़ कर मन्त्रार्थ तीन प्रकार का होता है या नहीं इस पर ही बल दिया और पूर्वाह्न का सारा समय इसी विषय में व्यतीत हुआ। अन्त में शंकराचार्य महोदय ने मुझे कहा कि आप तीन प्रकार का अर्थ होता है बार-बार कहते हैं किसी एक मन्त्र का ही तीन प्रकार का अर्थ करके बतावें 'अग्निमीळे' का ही करें। यतः यह प्रश्न लगभग एक बजे किया गया था, सभा समाप्त होने को थी; अतः मैंने कहा कि कल प्रातः मैं उक्त मन्त्र के तीनों प्रकार के अर्थ बताऊँगा।[2] तत्पश्चात् सभा विसर्जित हुई।

१७ ता० को प्रातः ठीक १० बजे मैं सम्मेलन में उपस्थित हुआ और खड़े होकर पूर्व प्रतिज्ञानुसार 'अग्निमीळे' मन्त्र का तीन प्रकार का व्याख्यान आरम्भ किया। कुछ समय पश्चात् जनता की ओर से हिन्दी में बोलने के लिए आवाजें आनी शुरू हुईं। अध्यक्ष श्री शंकराचार्यजी ने मुझे कहा कि आप के पक्ष के लोग कोलाहल मचा रहे हैं इन्हें शान्त करें। इसके उत्तर में मैंने कहा कि मेरे पक्ष का यहाँ कोई नहीं है, कारण मुझे यहाँ के किसी व्यक्ति ने नहीं बुलाया है। आप के निमन्त्रण पर आया हूँ। अतः जो कोई भी कोलाहल कर रहे हैं सब आप के ही पक्ष के हैं।

इस प्रकार अन्त में कार्यवाही हिन्दी में आरम्भ हुई। मैंने यज्ञीय मन्त्रार्थ जो कि उभय पक्ष सम्मत था करके उसी के आधार पर आधिदैविक व्याख्या की। आध्यात्मिक व्याख्या अभी पूरी तरह उपस्थित ही नहीं की थी कि अधिक काल हो जाने के बहाने अध्यक्ष महोदय के आदेश से मुझे बैठना पड़ा। इसके पश्चात् पूर्वपक्षी विद्वान् ने पुनः अपना पैंतरा बदला। ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं या नहीं इस पर प्रश्न किया। पूर्वाह्न में सारा वादविवाद इसी विषय में होता रहा।

मैंने इस प्रकरण में कहा कि जिस मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् वचन के अनुसार ब्राह्मण की वेद संज्ञा मानी जाती है वह वचन केवल कृष्ण यजुर्वेद के श्रौत सूत्रों में ही मिलता है। ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद और सामवेद के श्रौत सूत्रों में नहीं है। इसका कारण यह है कि ऋग्वेद, शुक्ल यजुर्वेद और सामवेद की मन्त्र संहिताएँ स्वतन्त्र हैं और इनके ब्राह्मण स्वतन्त्र पृथक् हैं, परन्तु कृष्ण यजुर्वेद की संहिताओं (शाखाओं) में मन्त्र और ब्राह्मण दोनों का सम्मिश्रण है है, अतः प्राचीन परम्परा के अनुसार उनके एक देश

---

१. इस विषय में जो महानुभाव विस्तार से जानना चाहें वे ऋषि दयानन्द कृत यजुर्वेद भाष्य के अस्मद् आचार्य श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु कृत भाष्य विवरण अ० ३ मं० ६ पृष्ठ २४९–२५६ तक देखें।

२. कार्यवश मुझे मध्याह्नोत्तर उपस्थित नहीं होना था।

मन्त्र की ही वेद संज्ञा प्राप्त थी ब्राह्मण भाग[1] की नहीं। इस प्रकार सम्पूर्ण संहिता का वेदत्व सिद्ध करने के लिए कृष्ण यजुर्वेद के श्रौतसूत्रकारों को ही ऐसा वचन बनाना पड़ा। इसीलिए इस सूत्र की व्याख्या में हरदत्त और धूर्त स्वामी ने स्पष्ट लिखा है कैश्चिन्मन्त्राणामेव वेदत्वमाश्रितम् अर्थात् किन्हीं व्यक्तियों ने मन्त्रों का ही वेदत्व माना है। इससे भी स्पष्ट है कि प्राचीन अनेक आचार्य मन्त्र को ही वेद मानते थे ब्राह्मण को नहीं। इतना ही नहीं, यदि इस वचन को प्रमाण भी मान लें तब भी आपस्तम्बादि श्रौत सूत्रों के परिभाषा प्रकरण में पठित होने के कारण यह पारिभाषिक संज्ञा है ऐसा मानना पड़ेगा। पारिभाषिक संज्ञा उसी शास्त्र में स्वीकार की जाती है जिसमें वह बताई गई है। यथा पाणिनि की अ ए ओ वर्णों की गुण संज्ञा पाणिनीय शास्त्र में ही स्वीकार की जाएगी। लोक वा न्याय आदि शास्त्रों में गुण शब्द से अ ए ओ का ग्रहण नहीं होगा। अतः 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम्' सूत्र से ब्राह्मण ग्रन्थों की सामान्य रूप से वेद संज्ञा नहीं हो सकती। मैंने इस सूत्र पर पूरा विस्तृत विचार १२ वर्ष पूर्व 'मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् इत्यत्र कश्चिदभिनवो विचारः' पुस्तिका में उपस्थित किया है। श्री करपात्रीजी (वहीं उपस्थित थे) ने उसका उत्तर देने का प्रयत्न तो किया, परन्तु इस बात का उत्तर नहीं दिया कि कृष्ण यजुर्वेदियों को ही ऐसा सूत्र बनाने की क्या आवश्यकता पड़ी, ऋग्वेदादि के श्रौत सूत्रकारों ने क्यों नहीं सूत्र बनाया। कारण स्पष्ट है ऋग्वेदादि में मन्त्र ब्राह्मण का पूर्णतया पार्थक्य है संमिश्रण नहीं, अतः उन्हें ऐसा वचन बनाने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी, इसका कोई उत्तर नहीं दिया। इतना ही नहीं मेरी घोषणा है कि कोई भी पौराणिक विद्वान् इस विवेचना का सही उत्तर आकल्पान्त नहीं दे सकता। इसके साथ ही ब्राह्मण ग्रन्थ के अनेक प्रमाण उद्धृत किये जिनसे स्पष्ट होता है कि ब्राह्मण वेद से पृथक् हैं। इस प्रकार १ बजे यह प्रकरण समाप्त हुआ।

मध्याह्नोत्तर पुनः ३॥ बजे से संस्कृत में शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ और अन्त तक संस्कृत में ही होता रहा।

प्रथम मैंने गोपथ ब्राह्मण पृ० २। १० का वचन उपस्थित किया—एवमिमे सर्वे वेदाः निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः (इतना ही उपस्थित किया शेष अगली बार के लिए छोड़ दिया)। इस वचन में रहस्य अर्थात् आरण्यक ब्राह्मण और उपनिषदों को वेद से पृथक् करके गिनाया है। यदि ये वेद के अन्तर्गत ही हैं तो पृथक् गिनाने की क्या आवश्यकता? इससे स्पष्ट है कि ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषदें वेद नहीं हैं। ऐसे प्रमाणों को उपस्थित करने पर पौराणिक विद्वान् कहा करते हैं कि यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थ वेद के अन्तर्गत हैं तथापि 'ब्राह्मण वसिष्ठ न्याय'[2] से ब्राह्मण ग्रन्थों का वैशिष्ट्य दिखाने के लिए पृथक् निर्देश किया है। पूर्वपक्षी यही बात न कह दे, इसलिए मैंने स्पष्ट कर दिया कि ब्राह्मण वसिष्ठ न्याय वहाँ लगता है जहाँ वक्ता और श्रोता दोनों यह जानते हों कि वसिष्ठ भी ब्राह्मण है। यदि इनमें से एक भी यह न जानता हो कि वसिष्ठ भी ब्राह्मण है तब यह न्याय नहीं लगता। यहाँ भी यह न्याय तभी लग सकता है जब दोनों पक्ष यह स्वीकार करलें कि ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद हैं। परन्तु ब्राह्मण ग्रन्थ वेद हैं यह तो अभी साध्य है। इतना ही नहीं सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः में स शब्द का प्रयोग है। इसका प्रयोग अप्रधान के साथ ही सदा होता है यथा देवदत्तः सपुत्रः समागतः (देवदत्त पुत्र सहित आया) यहाँ देवदत्त का आगमन मुख्य है पुत्र का गौण। इसलिए इस वचन में ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषदों को पृथक् स्वीकार करते हुए (जैसे देवदत्त और उसका पुत्र पृथक् है) वेद से इनकी हीनता अप्रधानता ही व्यक्त की गई है।

१. यहाँ ब्राह्मण भाग में 'भाग' शब्द का प्रयोग कृष्ण यजुर्वेद की संहिता की दृष्टि से किया है। आर्यसमाज के अनेक विद्वान् प्रायः मन्त्र भाग और ब्राह्मण भाग शब्दों का प्रयोग करते हैं, वह अशुद्ध है क्योंकि यदि मन्त्र भाग भी वेद है ऐसा कहा जाएगा तो उसका दूसरा भाग भी वेद माना जाएगा। जो वृक्षत्व वृक्ष की कुछ शाखाओं में है वह उसकी दूसरी शाखाओं तथा मूल वा तने में भी है। अतः मन्त्र भाग वेद है ऐसा स्वीकार करने पर ब्राह्मण भाग को भी न्याय की दृष्टि से भी आपाततः वेद मानना पड़ जाएगा। अतः मन्त्र और ब्राह्मण के साथ भाग शब्द का भूल कर भी व्यवहार नहीं करना चाहिए।

२. ब्राह्मणा आयाताः वसिष्ठोऽप्यायातः। यहाँ वसिष्ठ के ब्राह्मण होने से 'ब्राह्मणाः आयाताः' कहने से कार्य चल सकता था फिर भी वसिष्ठ का पृथक् निर्देश इसलिए किया कि वह अन्य ब्राह्मणों से विशिष्ट है, प्रधान है।

इस पर पूर्वपक्षी वक्ता ने यथार्थ उत्तर न देते हुए इधर उधर की बातें करके अपना समय बिताया। तदनन्तर मैंने पुनः कहा कि पूर्व आक्षेपों का कोई समाधान नहीं किया गया, इस के साथ ही उक्त वचन में आगे कहा है सेतिहासाः सपुराणाः क्या इतिहास (महाभारत) और पुराण आप के मतानुसार (हमारे मत में नहीं) जो व्यासकृत हैं वेद हैं? जैसे ब्राह्मण ग्रन्थ आदि। क्योंकि इनको भी उसी प्रकार स्मरण किया है। इतना ही नहीं अपौरुषेय वेद में (आप के मतानुसार) गोपथ में व्यास निर्मित महाभारत वा पुराणों का निर्देश कैसे हुआ?

इस पर पूर्वपक्षी ने कहा कि प्रतिद्वापर में व्यासजी पुराणों की रचना करते हैं अतः यह कर्म प्रवाह से नित्य है यथा सूर्य चन्द्रादि का निर्माण। इस पर मैंने कहा कि आप के पुराणों में यह नहीं लिखा कि प्रतिद्वापर व्यासजी पुराणों का प्रवचन करते हैं, बल्कि वेदों का प्रवचन करते हैं इतना ही लिखा है अतः आप का उक्त कथन ठीक नहीं। साथ ही मैंने पूछा कि मन्त्रब्राह्मणयोर्वेदनामधेयम् वचन से तो ब्राह्मण ग्रन्थों की वेद संज्ञा नहीं हो सकती, कोई ऐसा लक्षण बताइये जिस से ब्राह्मण ग्रन्थ भी वेद माने जाएँ।

इस पर पूर्वपक्षी ने कहा कि सम्प्रदायाविच्छिन्नत्वे सति अस्मर्यमाणकर्तृत्वं वेदत्वम् अर्थात् गुरु परम्परा का विच्छेद न होने पर भी जिस ग्रंथ का कर्ता स्मृत न हो वह वेद है। इस से जैसे मन्त्रों का कर्ता स्मृत नहीं वैसे ही ब्राह्मण ग्रंथों का कर्ता स्मृत न होने से दोनों समान रूप से वेद हैं।

पूर्वपक्षी के इस लक्षण पर ब्राह्मण ग्रन्थों के लेखकों का नाम उपस्थित किया जा सकता था। परन्तु वैसा न करके मैंने उनके लक्षण में ही क्रमशः दो दोष उपस्थित किए। (१) आप के मत में जिन ग्रन्थों का गुरुशिष्य सम्प्रदाय नष्ट न हुआ हो वे वेद हैं। हम आपके ग्रन्थों से जानते हैं कि ब्राह्मण आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थ पहले सस्वर थे अब शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण को छोड़ कर सब स्वर-रहित हो गए। अतः स्वर के लुप्त होने से स्पष्ट है कि इन ब्राह्मण ग्रन्थों के पठनपाठन में गुरुशिष्य सम्प्रदाय का नाश हुआ है। क्योंकि जहाँ जहाँ गुरुशिष्य सम्प्रदाय का नाश नहीं हुआ, उन ग्रन्थों में अक्षर मात्रा वर्ण स्वर का एक भी पाठान्तर नहीं मिलता। यथा शाकल संहिता माध्यन्दिन संहिता, तैत्तिरीय संहिता आदि। जिन ब्राह्मण ग्रन्थों में स्वरों का लोप हो गया वह लोप विना सम्प्रदाय नाश के हो नहीं सकता, अतः जिन ब्राह्मणों के स्वरों का नाश हो चुका है अर्थात् सम्प्रदाय भंग हो चुका है वे आपके लक्षणानुसार ही वेद नहीं हो सकते।

इस अश्रुतपूर्व करारी चोट से सभी पूर्वपक्षी घबरा गए। पूर्वपक्षी विद्वान् ने पराजय से बचने के लिए स्वमत विरुद्ध 'स्वर रहित भी ग्रन्थ वेद है' मत स्वीकार किया। इस पर मैंने श्री शंकराचार्यजी से व्यवस्था माँगी कि क्या ऋग्वेद के मन्त्रों से स्वर हटा दिए जाएँ तो आप उन्हें वेद मानेंगे। उनके पास भी कोई उत्तर नहीं था, अतः उन्होंने स्वीकार किया कि स्वर रहित भी मन्त्र वेद ही है। इस पर मैंने कहा कि आपका यह कहना ठीक नहीं।[1] स्वर रहित ग्रन्थ कदापि वेद नहीं हो सकते क्योंकि मीमांसा के कल्प सूत्राधिकरण में 'कल्पसूत्र वेद हैं या नहीं' पर विचार करते हुए इनके वेदत्व को हटाने के लिए युक्ति दी है असन्निबन्धनत्वात्। इसका टीकाकारों ने अर्थ किया है स्वररहितत्वात् स्वररहित होने से कल्पसूत्र वेद नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि स्वर रहित ब्राह्मण ग्रन्थ वेद नहीं हो सकते। इसी प्रसंग में मैंने कहा कि आरम्भ से ही उन ब्राह्मणों पर स्वर नहीं था, यह भी आप नहीं कह सकते क्योंकि पहले लौकिक भाषा भी सस्वर थी। पाणिनि का विभाषा भाषायाम् (६।१) सूत्र इसमें प्रमाण है। इस पर श्री शंकराचार्य कहने लगे कि पाणिनि ने स्वर प्रक्रिया में सारे उदाहरण वेद के दिए हैं लौकिक भाषा में भी स्वर होता तो उसके भी उदाहरण देते। श्री शंकराचार्य के वक्तव्य के उत्तर में मैंने कहा कि पाणिनि ने कोई उदाहरण अपनी अष्टाध्यायी में नहीं दिए। जो उदाहरण मिलते हैं वे काशिका में वामन के हैं और सिद्धान्तकौमुदी में भट्टोजि दीक्षित के। इतना ही नहीं आप अपना कौमुदी ग्रन्थ भेजिए मैं पचासों सूत्रों के वे उदाहरण दिखाऊँगा जो वेद के नहीं हैं लौकिक भाषा के हैं। इस पर श्री शंकराचार्य जी को जो अपने को महावैयाकरण मानते हैं, निरुत्तर होना पड़ा।

(२) इसके पश्चात् पूर्वपक्षी के वेद के लक्षण के दूसरे अंश पर दूसरा दोष उपस्थित किया। सम्प्रदाय के नाश न होने पर भी कई ग्रन्थ ऐसे हैं जिनके कर्ता का हमें ज्ञान नहीं परन्तु वे वेद नहीं माने जाते। यथा माध्यन्दिन संहिता का पदपाठ। ऋग्वेद के पदपाठ का कर्त्ता वा प्रवक्ता शाकल्य था,

१. यहाँ से आगे प्रायः मध्यस्थ स्वरूप श्री शंकराचार्यजी से ही वादविवाद होता रहा।

सामवेद का गार्ग्य, अथर्व का शौनक, तैत्तिरीय का आत्रेय। ऐसे माध्यन्दिन पदपाठ का कर्त्ता कौन है, यह किसी को ज्ञात नहीं और इसके गुरुशिष्य सम्प्रदाय का नाश भी नहीं हुआ। यदि सन्देह हो तो अपने वैदिकों से पूछ लें। अतः आपके लक्षण के अनुसार यह पदपाठ भी अपौरुषेय वेद होगा परन्तु पदपाठ को अपौरुषेय नित्य नहीं माना जाता। अतः आपका लक्षण उभयथा दोष युक्त है।

इस पर भी पूर्वपक्षी विद्वान् ने पुनः पराजय से बचने के लिए स्वमत विपरीत पदपाठ को भी नित्य अपौरुषेय वेद स्वीकार किया। इस पर मैंने पुनः मध्यस्थ श्री शंकराचार्यजी से व्यवस्था माँगी। श्री शंकराचार्य और श्री करपात्री जी दोनों ने पदपाठ को भी वेद स्वीकार किया।

इस स्वपक्ष विरुद्ध मत के स्वीकार करने पर मैं विशेष रूप से श्री शंकराचार्य और करपात्रीजी से ही सीधा जूझ पड़ा और पदपाठ अनित्य हैं पौरुषेय हैं, इस बात के सिद्ध करने के लिए एक पर एक प्रमाणों की क्रमशः झड़ी लगादी। सबसे प्रथम यास्क का **वनेन वायो न्यधायि चाकन** मन्त्र के व्याख्यान में शाकल्य कृत पदपाठ के संबंध में लिखा वचन—**वा इति च य इति च चकार शाकल्यः उदात्तं त्वेवमाख्यातमभविष्यत् असुसमाप्तश्चार्थः** ('वायः' को शाकल्य ने वा यः दो पद मानकर दो टुकड़े किए हैं ऐसा करने से यत् का योग होने से अधायि क्रिया उदात्त होनी चाहिए परन्तु वेद में अनुदात्त है और यत् के निर्देश से मन्त्रार्थ भी पूरा नहीं होता जब तक तत् का अध्याहार न किया जाए) उपस्थित करके कहा कि यास्क शाकल्य कृत पदपाठ को केवल अनित्य ही नहीं मानता अपितु उसमें दोष भी उपस्थित करता है। इस पर मध्यस्थ ने निरुक्त तथा उक्त मन्त्र का पता पूछा। स्थान निर्देश करने पर कई पण्डित उक्त ग्रन्थ निकाल २ कर पन्ने उलटने लगे लगभग १० मिनट पीछे करपात्रीजी ने इसका समाधान करने की चेष्टा की कि यास्क के चकार का अर्थ बनाना नहीं है प्रवचन करना है। व्याकरण के अनुसार तो वेद के अनेक पद अशुद्ध कहे जा सकते हैं पर उन्हें कोई अशुद्ध नहीं मानता। अतएव अर्थ की दृष्टि से वायः एक पद ही है परन्तु अध्ययन कृत अदृष्ट के लिए वा यः ऐसा ही परम्परा से स्वीकार किया जाता है इत्यादि।

इस पर मैंने उत्तर दिया कि यदि अर्थ की दृष्टि से वायः दो पद युक्त नहीं तो यास्क का शाकल्य पर दोष देना और उसे पौरुषेय कहना ठीक है। अन्यथा यदि आप पदपाठ को अपौरुषेय नित्य मानते हैं तो कह दीजिए कि यास्क का दोष दर्शन गलत है, मैं बैठ जाता हूँ। इतना ही नहीं अब मैं अन्य प्रमाण देता हूँ जिसमें स्पष्टतया पदपाठ को अनित्य बताया है—कैयट महाभाष्य प्रदीप ३।१।१०९ में लिखता है—**संहिताया एव नित्यत्वं पदविच्छेदस्य तु पौरुषेयत्वम्**। अतः पदपाठ अनित्य पौरुषेय हैं यह स्पष्ट है इस कारण पदपाठ अपौरुषेय वेद नहीं हो सकते।

इस पर श्री करपात्रीजी कैयट के वचन पर विचार करके[1] कहने लगे कि वैयाकरण वेद विषय में प्रमाण नहीं। कैयट की अनेक बातों का नागेश ने खण्डन कर दिया है अतः कैयट का वचन प्रमाण नहीं।

इस पर मैंने उत्तर दिया कि यद्यपि नागेश ने कैयट के अनेक मतों का खण्डन किया है पुनरपि इस स्थल पर खण्डन नहीं किया, अतः यह उसे भी स्वीकृत है। इतना ही नहीं, नागेश ने तो महाभाष्य ६।३ की टीका में पदपाठों में सम्प्रदाय भ्रंश भी माना है जिसे न आप स्वीकार करते हैं और न मैं। यह भी ध्यान रहे कि यदि कैयट ने पदपाठों के पौरुषेयत्व का विधान स्वयं अपने रूप में किया होता तब तो उसे कथंचित् अप्रमाण कहा जा सकता था। परन्तु कैयट ने उक्त मत तो महाभाष्यकार पतञ्जलि के—**न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः पदकारैर्नाम लक्षणमनुवर्त्यम्** (सूत्रकार को पदकारों का अनुसरण नहीं करना चाहिए पदकारों को सूत्रकारों के लक्षणों का अनुसरण करना चाहिए) वचन की व्याख्या में लिखा है। महाभाष्य के उक्त वचन का यह स्पष्ट अभिप्राय है कि पदपाठ पौरुषेय अनित्य है। यदि आप महाभाष्यकार पतञ्जलि के वचन को भी वैयाकरण होने मात्र से अप्रमाण कहें तो मैं बैठ जाता हूँ, मुझे ऐसी अवस्था में कुछ नहीं कहना।

इस पर पुनः कुछ समय परस्पर विचार विनिमय करके श्री करपात्रीजी बोले कि महाभाष्यकार का उक्त वचन प्रौढिवादमात्र (एक देशी जबरदस्ती का उत्तर) है सिद्धान्तरूप नहीं। महाभाष्यकार कई स्थानों पर प्रौढिवाद से उत्तर देते हैं वे उत्तर प्रामाणिक नहीं माने जाते।

इस वक्तव्य पर मैंने कहा कि यह सत्य है कि महाभाष्य में प्रौढिवाद से अनेक उत्तर दिए गए हैं परन्तु कौन सा उत्तर प्रौढिवाद से दिया गया है इसके परिज्ञान के लिए दो कसौटियाँ हैं। पहली—जिस उत्तर के विपरीत

१. कैयट के वचन का पूरा पता देने पर भी जब शीघ्रता से पूर्वपक्षियों से न निकाला जा सका तो महाभाष्य मेरे पास भेजा, मैंने उक्त पृष्ठ निकाल कर उन्हें दिया।

अन्यत्र लेख मिले उन परस्पर विरोधी उत्तरों में एक प्रौढ़िवाद का उत्तर होगा दूसरा सिद्धान्तरूप का। दूसरी—प्रौढ़िवाद का उत्तर एक स्थान पर ही मिलेगा उसका पुनः पुनः निर्देश न होगा। तदनुसार पदपाठ विषयक उक्त मन्तव्य का विरोधी वचन सम्पूर्ण महाभाष्य में उपलब्ध नहीं अतः यह प्रौढ़िवाद से कहा गया है यह कहना असत्य है। इतना ही नहीं, यह वचन महाभाष्य में अध्याय ६ और ८ में दो स्थानों पर और भी आया है। इसलिए अनेक स्थानों में समानरूप से कहा गया उत्तर प्रौढ़िवाद का नहीं माना जा सकता। इतने पर भी यदि वैयाकरण होने से महाभाष्यकार के वचन से सन्तोष न हो तो मैं वैदिक विद्वान् का मत उपस्थित करता हूँ—भर्तृहरि महाभाष्य की टीका में पृष्ठ २६८ पर लिखता है—एवं च कृत्वा वृको मासकृत इत्यवग्रहभेदोऽपि भवति। चन्द्रमसि प्रवृत्तो मासशब्दो अवगृह्यते वृके मासकृत् (वृको मासकृत मन्त्र में चन्द्रमा अर्थ में मास ऽकृत् ऐसा एक पद मानकर अवग्रह किया जाता है और वृक अर्थ में मा सकृत् दो पद माने जाते हैं)। यदि यह कहा जाए कि भर्तृहरि का वचन भी वैयाकरण होने से अप्रमाण है तो यह अशुद्ध है। भर्तृहरि वैयाकरण होते हुए भी परम वैदिक है। उसकी वैदिकता को गणरत्नमहोदधिकार वर्धमान जैसे जैन आचार्य भी मुक्त कण्ठ से स्वीकार करते हैं। वर्धमान लिखता है—तत्र भवतां वेदविदामलंकारभूतेन भर्तृहरिणा। यास्क भी वैदिक है अतः यास्क भर्तृहरि पतञ्जलि कैयट आदि के उद्धृत वचनों से स्पष्ट है कि पदपाठ ग्रन्थ अनित्य पौरुषेय हैं, ये पदपाठ ग्रन्थ अपौरुषेय वेद नहीं हो सकते। इस प्रकार आपका वेद लक्षण उभयथा दोष दुष्ट होने से त्याज्य है।

इसके पश्चात् साढ़े पाँच बजे का समय हो जाने के कारण श्री शंकराचार्यजी ने अपने भाषण में—"यह शास्त्रार्थ जय पराजय के लिए नहीं किया गया ज्ञानवर्धन के लिए किया गया है अतः यहाँ पराजय का कोई प्रश्न नहीं, यहाँ तो वाद कथा हुई है। श्री मीमांसकजी मेरे पूर्वाश्रम के मित्रों में से हैं इनकी योग्यता मैं जानता हूँ। बड़ी विद्वत्ता से इन्होंने अपने पक्ष का पोषण किया है। अब अतिकाल होने से यह सभा समाप्त की जाती है। अगले दिन ज्योतिष सम्मेलन होगा.....।" आदि कह कर लीपापोती करके सभा विसर्जित की।

श्री शंकराचार्यजी के उक्त भाषण के मध्य में ही जब आपने वादकथा का निर्देश किया तब मैंने बीच में टोकते हुए उनसे कहा कि इस वादविवाद को वादकथा कहना शास्त्रार्थ के नियमों के विरुद्ध है। आपने दो बार अस्थान में मेरे लिए निग्रह स्थान का प्रयोग किया था अर्थात् आप निग्रह स्थान में आ गए। उस समय मैंने जानबूझ कर कि कहीं यह कथा न्याय शास्त्र में न चली जाए, कुछ नहीं कहा। परन्तु आपको ज्ञात होना चाहिए कि वाद कथा में प्रतिपक्षी के लिए निग्रह स्थान का प्रयोग नहीं होता। यतः आपने निग्रह स्थान का प्रयोग किया, अतः आपके वचनानुसार ही यह कथा वाद कथा न होकर जल्प वा वितण्डा कथा रही यह प्रमाणित होता है।

विशेष—जब से पदपाठों के अनित्यत्व का प्रकरण चला उस अन्तिम डेढ़ घण्टे में पौराणिक ३-४ विद्वान् बराबर अपनी पुस्तकों में से मेरे दिए गए उद्धरण निकाल निकाल कर श्री शंकराचार्यजी तथा श्री करपात्रीजी के हाथों में देते रहे। वे दोनों प्रतिवार ५-१० मिनट विचार करके उत्तर देते थे। इससे संस्कृत से अनभिज्ञ पौराणिक जनता पर भी आर्यसमाज का भारी प्रभाव पड़ा। प्रायः अनेक व्यक्ति कहते सुने गए कि आर्यसमाज का पण्डित बहुत तगड़ा रहा। वह अकेला मुँह जबानी २-३ मिनट ही बोलता था और उसका उत्तर देने के लिए कई कई पण्डित मिलकर पुस्तकों के पन्ने उलटते थे और दोनों (श्री शंकराचार्य तथा करपात्रीजी) पुस्तकें देखकर और ५-७ मिनट सोच कर उत्तर देते थे।

इस प्रकार इस शास्त्रार्थ का पौराणिक जनता पर तो भारी प्रभाव पड़ा ही किन्तु अमृतसर की आर्यजनता भी कहने लगी कि आपने आर्यसमाज की लाज रख ली। मैंने आर्यसमाजियों के उक्त कथन पर कहा कि आप लोग इस भारी तैयारी को देखते हुए भी सोते रहे। मैं तो सम्मेलन द्वारा निमन्त्रित होकर आया था, आप लोगों ने क्या किया? यह उदासीनता आर्यसमाज को ले डूबेगी।

यह भी ज्ञात रहे कि सारे विवाद प्रकरण में कथन प्रतिकथन को टेप रिकार्ड मशीन से रिकार्ड किया गया परन्तु अनेक अवसरों पर मशीन बन्द होती थी (मेरे पास ही मशीन थी अतः मैं देखता रहता था)। जहाँ तक मुझे ज्ञात है अन्तिम दृश्य का तो रिकार्ड किया ही नहीं गया। इस लेख में एक दो स्थान पर श्री करपात्रीजी और श्री शंकराचार्यजी के नामों में परिवर्तन हो सकता है क्योंकि प्रायः अन्तिम समय में दोनों ही महानुभाव उत्तर देने में प्रवृत्त हो जाते थे।